॥ सर्वज्ञ सागर ॥

D
4

बोले धर्म दे सुनो गुसाई। बात सभी दो मुझे समझाई ॥
वर्णन भेद का करो श्रीमान। सर्वज्ञान का करो बखान ॥
सबका सार मुझे बतलाऐं। भिन्न-भिन्न कर मुझे समझाऐं ॥
सावन बरसे जितना पानी। इतने मंत्र कहे तुम ज्ञानी ॥
कठिन बहुत है मत ये तुम्हारा। कैसे समझे इसे जग सारा ॥
कुछ ना समझ प्राणी की आए। सुनके ही अनुमान लगाए ॥
इसका भेद कहाँ मूरख पावै। बिन सतगुरु समझ ना आवै ॥
गर्भ में वास नही जो करता। जग उस गुरु को श्रेष्ठ समझता

साखी - बहुत भेद तुमने कहे, सुने सब लगाके ध्यान।
प्रभु अब मुझे बतलाइये, आदि अंत का ज्ञान ॥

सत्गुरु वचन - गुरु कहें तब अपने विचार। धर्मदास सुन प्राणाधार ॥
ज्ञान बहुत मैं तुझे सुनाया। भेद तूने सब मुझसे पाया ॥
ग्रन्थो का कहा तुझसे ज्ञान। भेद रहे तुम इसमे मान ॥
फिर टकसार भी तुम्हे बताया। वो ना समझ तुम्हारी आया ॥
बीजक ज्ञान भी तुम्हे सुनाया। मन ना उसमे तुमने समाया ॥
चौथा मूल ज्ञान दोहराया। सब लोकों का भेद बताया ॥
ज्ञान ये चार कहा समझाय। समझे ना तुम प्रीत लगाय ॥

Signature

बिना प्रीत के काम ना चलता। बिन श्रद्धा के जीव भटकता ।।

दोहा/साखी - पुरुष ने जो हमसे कहा, वो तुम्हे दिया बताय ।।
नहीं छिपाया तुमसे कुछ, धर्म दूँ तुम्हे बताय ।।

।। धर्मदास वचन ।।

करता धर्म फिर विनती भारी। साहिब मैं चरनन बलिहारी ।।
सभी भेद तुम हो समझाऐ। संदेह जिससे सब मिट जाए ।।
आदि अंत का मध्य बताओ। मुझसे ना प्रभु भेद छुपाओ ।।
कैसे आदि होती बलवान। उत्पत्ति प्रलय करो बखान ।।
तुम संदेश आदि का लाये। भेद सभी मुझको बतलाऐ ।।
चार ज्ञान प्रभु मुझे सुनाए। अर्थ सभी उसका समझाए ।।

साखी - गुरु तुम हमारे आदि हो, वंश हम तुम्हारे।
बताओ ज्ञान अन्त का, मिटें भ्रम जो हमारे ।।

सतगुरु वचन - तब साहिब लगे वचन सुनाने। बात धर्म को लगे समझाने
आदि अन्त नहीं किसी का वास। अपने आप ही हुआ प्रकाश ।।
सिवा पुरुष के ना था और कोई। ना शिष्य था ना गुरु है कोई
ना थे ब्रह्मा वेद निशानी। और नांही थे शिव व भवानी ।।
ना थे विष्णु व काल अन्याई। ब्रह्मा को भी ना थी सृष्टि रचाई

Signature

साखी - पिण्ड ब्रह्माण्ड थे ना यहाँ, ना था लोक विस्तार।
केवल एक पुरुष था.. रचा जिसने संसार।।

॥ धर्मदास वचन ॥

गुरुवर बात ये मन में आई। तुम गुरुरूप सदा सुखदाई॥
ब्रह्मा देवता वेद विचार। आपसे पूछें इनका सार॥
वेद जगत में हुए जो चार। चार ही धाम कहें, विचार॥
सर्व ज्ञान गति तुमने बताई। क्षर-अक्षर की कथा सुनाई॥
उत्तर पुरुष ही सब कुछ कीन्हा। हम सबको वही जीवन दीन्हा॥
ब्रह्मा भेद यही समझाते। अष्टांग योग भी यही बताते॥
सब मुनियों ने जो बतलाया। वह शुकदेव ने सबको सुनाया॥

साखी - आप कहें हम पुरुष को, देखे हृदय स्थान।
आप फिर क्यों आए यहाँ, बतलाओ श्रीमान॥

॥ सतगुरु वचन ॥

इसकर बोले सन्त महान। बात करो अज्ञानी समान॥
जो कुछ भी ब्रह्मा ने विचारा। सबकी गति को कहीं निरधारा॥
इससे अलग नहीं कुछ भी भाई। जीवन ज्योत इसी ने जलाई॥

Signature

मुझसे पूछो त्रिवाचिक ज्ञान। नित प्रति अगम का करूं बखान ॥
क्या कहूं मैं कहते हुए डरता। उत्पति कारण कहने मे लजता ॥
नही थे जब पिंड ब्रह्मण्ड। ना थी पृथ्वी व नवखण्ड ॥
लोक द्वीप भी ना थे बनाए। नांही जीव जन्तु निर्माए ॥
नही थे पुरुष और प्रकृति। ना ही अक्षर निरंजन शक्ति ॥
ना थे ब्रह्मा विष्णु महेश। शेष ना गौरी और ना गणेश ॥
ना थे ज्ञान, ध्यान न ज्ञानी। नांही थी वेदों की निशानी ॥
ना थी तब सद्गुरु की वाणी। ना था सात समुद्र में पानी ॥
ना थे सुरति शब्द और नाम। नाही भी द्वैत अद्वैत का भाव ॥
प्रमाण

साखी — पांच तत्व ना थे यहाँ, ना थे आठो धाम।
नांही थे नौ द्वार भी, करने को विश्राम ॥

॥ धर्मदास वचन ॥

सतगुरु मैं बलिहारी तेरी। जो काटी जीवन की बेरी ॥
दया सिन्धु दया मुझपे कीन्हे। शिष्य मुझे है जो बनाली-हे ॥
सतगुरु आप कुछ ना छिपाओ। आदि अन्त उत्पन्त सुनाओ ॥

साखी - धर्मदास विनती करे, पकड़ गुरु के पाँय।
साहिब आपसे बिछड़के शब्द भी खो जाय ॥

Signature

धर्मदास सुनो अब वो कहानी। मुनि देवो ने जो ना जानी ॥
तन मन धन से जो ध्यान लगावे। आदि अन्त का ज्ञान वो पावे ॥
अनेक युगों से धरा पे मैं आता। सत्य शब्द का ज्ञान बतलाता
कहना मेरा कोई ना माने। बातों को मेरी झूठो जाने ॥

॥ सतयुग वर्णन ॥

सतयुग चार हंस समझाए। राजा प्रथम जो समझ ना पाए ॥
इक रानी चित्ररेखा था नाम। समझा शब्द लगाके ध्यान ॥
उसने युगबन्ध चौका कीन्हा। युगबन्दी को नाम है लीना ॥
राजा रानी जो पूछे मुझसे। सत्य वचन वह कहता तुझसे ॥
अष्टचौक का शब्द बताया। सत्यलोक उनको भिजवाया ॥
दूजे राजा वटक्षेत्र से आए। सतसुकृति निज नाम बताए ॥
सतसुकृति ने पूछा ज्ञान। समझाए तब उन्हे शब्द नाम ॥
तीजे राजा हरिश्चन्द आए। बन्धन काटके लोक सिधाए ॥
चौथी नगरी मथुरा आई। विकसी ग्वालिन इक समझायी ॥
चार हंस सतयुग समझाए। ये चारों गुरुवंश कहाए ॥

इन हंसो ने नौ लाख बचाए। शब्द ज्ञान से लोक पहुंचाए ॥

Signature

॥ सर्वज्ञ सागर ॥

— त्रेता युग का वर्णन —

त्रेता युग का कहूँ विचार। सात हंस गये भव से पार ॥
पहले ऋषि शृंगी समझाए। दूजे अयोध्या के मधुकर आए ॥
जिनको शब्द सार बतलाया। तीजा बोध लक्ष्मण को कराया ॥
चौथे बोध जाने हनुमान। शक्ति शब्द गये वो मान ॥
पाँचवे रावण को भी बताया। अभिमानी वह समझ ना पाया ॥
मन्दोदरी गई पहचान। दिया शब्द का उसको ज्ञान ॥
छठे वशिष्ट जी तक हम आए। ब्रह्म निरूपन उन्हे समझाए ॥
सातवां जंगल करे निवासा। नाम था उनका ऋषि दुर्वासा ॥
सात हंस सात गुरु बनाए। परमतत्व हंस वो पाए ॥
सातगुरु त्रेतायुग आए। दे उपदेश हंस मुक्ताए ॥

॥ द्वापर युग वर्णन ॥

त्रेता पीछे युग द्वापर आया। सत्रह जीवों ने शब्द को पाया ॥
प्रथम था राजा विजय इक ज्ञानी। इन्दुमति थी जिसकी रानी ॥
दूसरे राजा युधिष्ठिर आए। द्रोपदी सहित नाम धन पाए ॥
तीजा भक्त पराशर आया। निर्णय ज्ञान उसे समझाया ॥
चौथे थे राजा धुंधुल महान। पाया जिन्होने शब्द का ज्ञान
शिष्य था पांचवा पारसदास। स्त्री सहित किया लोक निवास

Signature

छठवा बोध गहण ने पाया | विहंग शब्द उसको समझाया ||
सातवे हरिदास समझाए | नीमसार में उसको पाए ||
आठवे सुकदेव पाए | सकल शब्द का भेद मिटाए ||
नौवे राजा विदुर समझाए | अकित रुप के जो दर्शन पाए ||
दशवे शिष्य राजा भोज बनाए | समस्त शब्द गुण उसके गाए ||
ग्यारवां राजा मुचकन्द तारा | बारहवाँ शिष्य चन्द्रहास उबारा ||
फिर हम वृन्दावन को आए | चार ग्वाले-गोपी समझाए ||
गुरु रुप फिर पंथ चलाया | भव सागर से हंस छुड़ाया ||
बावन लाख जीव मुक्ताए | कलयुग मैं फिर हम आए ||

|| कलयुग वर्णन ||

प्रथम थे गोरखदत्त समझाए | तारक भेद उनको बताए ||
फिर शाह बलख को बोध कराया | अरबी पद वो शोध कर पाया ||
तीजे रामानन्द हमें पाए | गुप्त भेद हम उन्हें बताए ||
चौथे पीर को दिया ये नाम | पांचवा लिया सिकन्दर जान ||
छठे वीरसिंह राजा आए | शब्द ज्ञान जो हमसे पाए ||
आठवे राजा भूपाले आए | ग्यारह रानी संग लोक सिधाए ||

Signature

नौवीं रतना बनिन समझाई। अग्रवाल थी, वह हलवाई ॥
दसवें थे धोबी अलिदास। शब्द कराया हृदय में वास ॥
ग्यारहवे राजाभोज समझाए। भक्ति में मन बहुत लगाए ॥
बारहवें मुहोम्मद शब्द को पाए। कुरान सुनाके उन्हे समझाए ॥
तेरहवे नानक पाए उपदेश। बताया उनको गुप्त सन्देश ॥
चौदहवे साहू दामोदर आए। शब्द ज्ञान पा वो मुक्ताए ॥
चौदह हंस कलयुग में उबारे। गुरु प्रताप से तर गये सारे ॥
पांच लाख पहले मुक्ताए। धर्मदास तुम पीछे आए ॥
वंश थापके सबको तारा। बयालिस लाख जीव उबारा ॥

दोहा - गुरु सुए हम तुम्हें मिले धर्म समझ लो ज्ञान।
ज्ञान से ना मुक्ति मिले मुक्ति दे बस नाम ॥

धर्मदास वचन - धर्मदास ने संसय मानी। बोले कबीर जो ऐसी वानी ॥
हाथ जोड़ चरनन चित धरते। सतगुरु से वो विनती करते।
संशय हृदय एक करता वास। मिटाओ ज्ञान का करके प्रकाश
धर्मदास मन शोक मनाते। जैसे कमल सम्पुट झड़ जाते ॥
हे स्वामी नादान मैं प्रानी। आप से पाए दर्शन स्वामी ॥
मानूं वचन जो आप बताए। वचन आपके हृदय बसाए ॥

Signature

(दोहा) - भयभीत हो सतगुरु से डरे बहुत धर्मदास।
अब ना पूछूँ ज्ञान आपसे मुझे दर्शन की आस॥

सतगुरु वचन - धर्म में वही बताऊँ तुझको। भेद जो पूछते हो तुम मुझको॥
प्रथम समर्थ में गुरु अकेला। संग ना जिसके और है चेला॥
प्रकट शब्द तभी होके आया। शब्द ने वही कमल निर्माया॥
सिंघासन वही कमल बनाया। दूजा कमल फिर शब्द खिलाया॥
वो ही काया का रूप अपार। असंख्य पंखुड़ी किया विस्तार॥
जहाँ बैठे संसार रचाया। शब्द ने इक आधार को पाया॥
हृदय मुख से किया प्रकाश। रूप तेज का हुआ निवास॥
काया से काया निर्माए। मुख कमल से बाहर आए॥
रूप सुरति का हुआ अपार। भृंगि शब्द पारस अनुसार॥
सुरति से हुआ कल्कि अवतार। जिसका शब्द बना आधार॥
निष्कलंक विनती तब कीन्हा। कौन जनम साहिब मुझे दीन्हा
भेद उत्पत्ति का मुझे सुनाओ। शब्द वही गुरु मुझे बताओ॥
बोले तब सृष्टि आधार। निष्कलंक सुन मेरा विचार॥
शब्द हमारा हृदय में धरना। सुमरन नित्य ही मेरा करना॥
जो चित्त सुरति तुम्हारे आए। वह वस्तु स्वयं बन जाए॥

Signature

दोहा - जो रचना चाहे करनी सुरति उसे निर्माए।
रचना कर तू लोक की, मैंने आज्ञा दी सुनाए।।
सुरति स्वंय सबकुछ है बनाती। इच्छा पल में पूर्ण हो जाती।।
निश्चल लोक हमारा वास। अविगति कमल में किया प्रकाश।।
दोहा - जीव सृष्टि में रचना करके किया जीव निर्माण।
शब्द भरोसे तुम रहो वचन लो मेरा मान।।
धर्मदास सुनो चित को लगाय। जब निष्कलंक सृष्टि निमाए।।
निकलंक सुरति श्वास बसाए। सच्छ सुरति आधार बनाए।।
दाहिने अंग से शब्द बनाया। अंकुर सुरति शब्द से उपजाया।।
सात कड़ी का किया विस्तार। यही विधि रचा है सब संसार।।
सात कड़ी अंकुर से आए। विभिन्न प्रसंग हेतु निमाए।।
सीप स्वरूप कड़ी जो कीन्हा। स्वास स्वरूप की इच्छा दीन्हा।।
सात इच्छा सात करियों में आई। स्वाति बूंद तब उसमें समाई।।
सात करी ने किया प्रकाश। नहीं तब धरती थी ना आकाश।।
अंकुर जब अर्द्धपूर्ण हो पाया। शब्द नांद तब कहां से आया।।
कियो जो सोहंद अंश विस्तारा। अंकुर पूर्ण किया दृष्टि डार।।
सात करी ये वही निमाया। मर्म ना उसका कोई है पाया।

Signature

इन्ही करियों से अण्डा आया। दो करियोंने ना अण्डा पाया॥
नही तब धरती थी ना अकाश। रहा अधर में अण्ड प्रकाश॥
मध्य में अण्ड प्रकाश फैलाया। प्रचण्ड अण्ड एक उपजके आया॥
भिन्न भिन्न गति न्यारी कीन्हा। शिव शक्ति अण्ड में घर दीन्हा
नौ सौ निमिष समय तब बीता। तबही अण्डा फिर वह फूटा॥
प्रथम तेज था अण्ड से आया। तेज वो पाँच तत्वों को स्चाया॥
बारह पालंग तेज हुआ विस्तार। पंच तत्व तब हुआ संसार॥
तत्व को स्नेह अण्ड पे आया। अस्थिर शब्द तब काल बनाया
सत्य वाणी ही तभी सुनाई। मूल सुरति जिसने निर्माई॥
सात सन्धियों को जब छिपाया। सोहम शब्द पीछे तब आया॥
सत्य शब्द सोहंम अनुसार। सोहंम सुरति का हुआ विस्तार॥
जिससे पुरुष अचिंत निर्माया। जिसको पुरुष ने पास बुलाया॥
पुरुष ने उसको काम बताया। सृष्टि रचो आदेश सुनाया॥
हाथ जोड़ वो विनती करता। विनती सुनो मेरी पालनकर्ता॥
कैसे रचूं मैं देह बताओ। भेद यह मुझको समझाओ॥
पुरुष ने तब उसे भेद बताया। शब्द प्रताप को उसे सुनाया॥
शब्द प्रताप लो शीश नवाके। ध्यान करो मेरा लौ लगाके॥

Signature

पाँच अण्ड हम पहले बनाए। सर्व तत्व गुण उनमें समाए।
इच्छा जो भी मन में लाओ। पल भर में ही तुम वह पाओ।।
शब्द प्रताप अचिंत तब लीन्हा। सकल सृष्टि वो उत्पन्न कीन्हा।।

दोहा - पुरुष से अण्ड लेकरके रचा सकल संसार।
सद्गुरु रहे थे निहार उसको वचन अनुसार।।

धर्म ने गुरु को शीश नवाया। अगम ज्ञान प्रभु मुझे बताया।।
अचिंत को सृष्टि आज्ञा सुनाकर। सन्धि पुरुष ने रखी कहें जाकर।।
किया किस लोक में जाके वास। ~~कहो~~ गुरु जी इसपे डालें प्रकाश।।

।। सत्गुरु वचन ।।

जब अचिंत को सृष्टि बताई। उसके पीछे इक सूरत उठाई।।
सोलह शंख अंकुर उपजाए। पांच अण्ड फिर उससे बनाए।।
निरंजसूरति अजर लोक बनाई। उसमें ही सातो संधि छिपाई।।
सात सन्धियो को गुप्त छिपाया। भेद किसी को ना ये बताया।।
निरंजलोक सन्धियो को दीन्हा। अपना वास निरन्तर कीन्हा।।
गुप्त स्थान निरन्तर बनाया। उसी में ही सत्गुरु छिपाया।।

दोहा - इतना रहस्य ये गुप्त बनाया पाया ना कोई पार।
पुरुष अचिंत की सृष्टि का धर्म जी सुनो विचार।।

Signature

पुरुष ने जब ये किया विचार। प्रेम सुरति का किया विस्तार॥
प्रेम आनंद उपजाया भाई। जिससे प्रेम सुरति निर्माई॥
प्रेम सुरति का रूप अपार। प्रेमानंद करे शब्द विचार॥
सुरति के नेत्र से बूंद इक पाई। हृदय में वही उसने बसाई॥
बूंद से अक्षर उसने बनाया। स्वर श्वांस से जो बाहर आया॥
पुरुष अचिन्त को आज्ञा दीन्हे। अण्ड के तेज में वास जो कीन्हे॥
बारह पालंग है जो अण्ड। उसी में सृष्टि तुम्हारी अखण्ड॥
अक्षर आनंद उसमें समायी। सुरति प्रकृति जिसमें उपजाई॥
प्रकृति से चार अंश रचाए। देख जिन्हे आनंद मनाए॥
इसी आनंद में निद्रा आई। सत्तर निमिष तक जो समाई॥
समाधि सब अंशों ने लगाई। मर्म उसका अब कहूँ समझाई॥
तब सतगुरु इक लीला कीन्हे। जल से अण्डा एक बना दीन्हे॥
अण्डा फिर जल में तैराया। नींद से जिसने सबको जगाया॥
अक्षर मन में बहुत घबराया। व्याकुल होके देखने आया॥
निकट जब वो अण्ड के आया। क्रोध अण्ड को ये देखने आया॥
वही क्रोध तब अण्ड समाया। तेज शक्ति ने असर दिखाया॥
तेज प्रभाव से फूटा अण्ड। जिससे उपजा काल प्रचण्ड॥

Signature

संशय अक्षर के मन आया | चारों अंशो को उसने बुलाया ।।
बहुत भांति उनको समझाके | भेजा पृथ्वी, बीज धरो जाके ।।
जिसपे उत्पन्न हो संसार | कूर्म बनाओ पृथ्वी आधार ।।
जिससे पृथ्वी हिल नहीं पाए | करना कूर्म तुम वही उपाय ।।
धर्मराय तुम काम ये करना | हिसाब सृष्टि का तुम रखना ।।
शिक्षा सब अंशो को दीन्ही | स्वंय शरण सतलोक में लीन्ही ।।
दोहा - अचिन्त करे रचना जग की कर अक्षर विस्तार |
बैठे निरंजन शुभ शिखर मान सरोवर द्वार ।।
पुरुष अचिंत विचार ये करता | सन्धि सुरति घट में जपता ।।
जिससे चौदह मुनि उपजाए | जल अण्ड से ही अंश बनाए ।।
मुनि वो चौदह दीप बिठाए | पाताल का विस्तार कराए ।।
सन्धि छाप सोपं सब दीन्हा | अक्षर लोक में चौका कीन्हा ।।
यहीं पुरुष चौदह अंश बनाए | मोह पुरुष को शब्द पे आए ।
शब्द के मन तब शंका आई | तभी श्वांस को घोड़ा भाई ।।
श्वासे से ही तब स्वर इक आया | माया सुरति ने अस्तित्व पाया
शब्द ने माया सुरति रचाई | अष्टांगी शक्ति वहां आई ।।
अक्षर अष्टांगी से ये कहता | जाओ वहाँ पे निरंजन रहता ।।

Signature

अष्टांगी बोली समझाके। करूंगी क्या मैं वहाँ पे जाके।
तब अक्षर उसे भेद बताए। दो शिक्षा निरंजन को जाय।
कन्या निकट जब उसके आई। दोउ निरंजन उसको धाई।।
देख कामिनी सुध नो भुलाया। पूछा कन्या तुझे किसने स्वाया।
काम प्रकट हुआ अति गम्भीर। हुआ निरंजन अति अधीर।।
सभी बात दोनो ने भुलाई। काम लहर दोनो पे छाई।।
तीन पुत्र वो वहाँ स्वाए। ब्रह्मा विष्णु शिव कहलाए।।
दोहा - जैसे काल निरंजन स्वंम. पुत्र हुए तीनों बार।
प्रलयकाल प्रलय करने को उत्पन्न हुए संसार।।

धर्मदास वचन - आनंद बहुत ही धर्म मनाया। पूरण गुरु है मैंने पाया।।
धन्य भाग्य जो सतगुरु पाया। अपना बनाके मुझे मुक्ताया।।
सतगुरु प्रश्न इक मन में आए। लख चौरासी क्यों निर्माए।।
दोहा - धर्मदास सुख अति पाए मन मनाए आनंद।
संशय मिटा तो प्रसन्न हुए जैसे पूनम चंद।।
धर्मदास सुन कहूँ समझाई। लख चौरासी क्यों ये बनाई।।
माया चरित तुझे मैं सुनाऊँ। एक एक सब भेद बताऊँ।।
चार कला चरी रूप वो चार। एक एक का करु विस्तार।।

Signature

एक रूप रह सुरति के पास। तीन रूप करें घटों में वास ॥
गायत्री एक कला का नाम। खोजे गये पिता ब्रह्मा भगवान ॥
तब गायत्री ब्रह्मा ने पाई। दूसरी कला लक्ष्मी बनाई ॥
मंथन सागर का जब कराया। तब लक्ष्मी को विष्णु ने पाया ॥
तीजी कला पार्वती रचाई। शिव ने अर्द्धांगिनी बनाई ॥
यह चरित्र माया का भाई। गति मति इसकी ना जानी जाई ॥
तीनो शक्ति का खेल अपार। इन्ही ने रचा सकल संसार ॥

दोहा - माया प्रबल होती सबसे, जो चाहे सो होय।
लाख चौरासी इसने रची, मर्म ना जाने कोय ॥ 1
माया सृष्टि ने माया रची, जीव अनेक बनाए।
माया से सब खेल रच कहे कबीर समझाय ॥ 2

॥ ज्ञान खण्ड वर्णन ॥ (द्वितीय खण्ड)

— धर्मदास वचन —

पूछे धर्म गुरु ध्यान लगाय। उत्पत्ति भेद दिया समझाय ॥
जीव कर्म का कहो विचार। जिससे हंस होता भव पार ॥
उस विधि का समझाओ ज्ञान। जिससे पाऊँ मैं पावन धाम ॥
जीव कल्याणी ज्ञान सुनाओ। उसे साहिब ना मुझसे छुपाओ

Signature

दोहा - सत्य सार बतलाऊँ तुझे जिससे बने सब काम।
जिसको सतगुरु जानते, है चौदह कोटि का ज्ञान।
सुन सुकृत मेरे प्राणाधार। तुमसे कहूँ सब कर विस्तार॥
मूल भेद ऋग्वेद बताया। चारो सुख का मर्म समझाया॥
पहले वेद थे चार बनाए। चारों धाम जीव मुक्ताए॥
भक्त जो शब्द का ध्यान लगाते। सब सुख पृथ्वी पर है पाते॥
कोई सिद्ध कोई पंडित बनता। वही रूप उसे फिर से मिलता॥
जब तक दान पुण्य की आसा। तब तक रहे बैकुण्ठ निवास॥
कोई विद्या कोई वेद को पावे। धरके देह लौट वो आवे॥
अब सुनो सामवेद विचार। विष्णु ध्यान करे अब पार॥
दोहा - पुण्य फलों का जो भोग करे, जग में देह धर आता है।
दान पुण्य फल के अनुसार वास वैकुण्ठ में पाता है।
तीसरी मुक्ति में तुम्हे बताता। मुनि योगी है शून्य में जाता॥
सामुज्य मुक्ति है चौथी भ्राता। शब्द ज्ञान से लोक को पाता॥
पांचवी जीवन मुक्ति बताता। जीव नहीं फिर देह को पाता॥
उत्तम पुरुष यही बतलाए। परम धाम को सन्त ही पाए॥
पुरुष भक्ति जो मन में रमाए। एक ब्रह्म में ही ध्यान लगाए॥

Signature

परम धाम को वो ही जाता। आत्मा को जो परमात्मा बनाता ।।

।। धर्मदास वचन ।।

पूछे धर्म जोड़के हाथ। भेद एक मुझसे कहो नाथ ।।
सतगुरु कौन सा वो स्थान। जहाँ पे जीव करे विश्राम ।।
करनी लोक मुक्ति का राज। सतगुरु मुझे बताओ आज ।।
मेरे सब भेदों को गुसाई। कृपा करके दीजिए मिटाई ।।

दोहा - किसके ऊपर सुमेरु है, किसके ऊपर कैलाश।
किसके ऊपर शून्य है. कहाँ अक्षर का वास ।।

— सतगुरु वचन —

सुनो धर्म मैं कहूँ विचार। यह गति भेद है अपरम्पार ।।
सोलह नाल पुरुष ने रचाए। लोक स्थम्भ को ये बनाए ।।
कदली नाल लोक से आई। सात शाखाएँ इसकी बताई ।।
स्वर्ण रंग की कदली नाल। एक रंग ही ये सब नाल ।।
प्रथम गुप्त नाल है भाई। पर्वत नाम जो अपना धराई ।।
जिसपे धाम परम है बनाया। जिसमें पुरुष का तत्व समाया ।।
दूसरी मंजुल नाल कहाए। मनिकगिरि नाम से जानी जाए ।।
उसपर मानिक द्वीप बसाया। अक्षर पुरुष ने द्वीप वो पाया ।।

Signature

तीजी सुरंग नाल कहाए। जिसपे झझरी द्वीप बनाए ॥
रहता जहाँ निरंजन राय। जिसने तीनो देव बनाए ॥
चौथी नाल का क्रान्ति नाम। जिसके ऊपर बैकुण्ठ धाम ॥
पाँच शिखर सुमेर पे साजे। एक इन्द्र, एक पे कुबेर विराजे ॥
इक पे ध्रुव, इक पे यमराज। मध्य में रही विष्णु महाराज ॥
पाचवी ~~नाल~~ नाल है जो रचाए। उसी पे है कैलाश बताए ॥
वहां पे शंकर करते वास। योग समाधि की जिन्हे आस ॥
छठवी नाल उमंग बनाई। जो अधाचल है कहलाई ॥
पारस नाल का हुआ निर्माण। सातवी त्रिकुटी ब्रह्म स्थान ॥
कदली नाल की सात पे शाखें। सातों दर्श यहीं तक राखें ॥
यही बनाव प्रथवी का मानें। अधर की वस्तु ज्ञान को छानें ॥
अधर चौका के चार प्रकाश। सूरज चांद का जहाँ निवास ॥
प्रथम अधर अंकुर को मान। पाँच अण्ड का किया निर्माण ॥
दूजा अधर निष्कलंकी जान। तीसरा रूप सुरति का मान ॥
चौथा अवगति नाम धराया। पांचवा सर्वज्ञ पुरुष कहलाया ॥
चार अंश मिल अधर बनाते। न्यारे घर- अधर से कहलाते ॥

Signature

दोहा - नहीं थे जब पांच तत्व, नहीं थे हाट और बाट।
नहीं थे तब लोक द्वीप नहीं थे ओघट घाट ॥
धर्मदास सब बताया तुझको। जो भी तूने पूछा मुझको ॥
सब अंशों के लोक बताए। अंश वंश सब तुझे समझाए ॥
नाम जपे जो लोक सिधाए। बिना नाम ना हंस मुक्ताए ॥
आवागमन रहे उसका जारी। शब्द ना सिमरे जो नर नारी ॥

— ॥ दोहा ॥ —

सर्वज्ञ सागर ज्ञान यह सब ग्रन्थों का सार।
कहे कबीर निज मूल का सत्य शब्द है अधार ॥

॥ सर्वज्ञ सागर समाप्त ॥

Signature

॥ उपसंहार ॥

जिन जीवों को बुद्धि आए। काम हैं अपना वही बनाएं ॥
कपट कुटिलता का फल मिटाके। सत्य विचार रहें लौ लगाके ॥
कर्म यमफन्द छुड़ाने का करना। नाहक पिस पिस के ना मरना ॥
भली भाँति तुम करो विचार। सतगुरु संग से गत लो सुधार ॥
खोटा खरा जो परख ना पाए। अन्धे समान वो भूल मिटाए ॥
औषध मिटाती है ज्यों रोग। उसी विधि मिटता है सब शोग ॥
देखो विचारके शब्द प्रकाश। जिससे हो अंधकार का नाश ॥
गुरु ऐसा कोई एक बताए। जीव का आवागमन मिटाए ॥
गुरु सेवा कर बनके प्यारा। मिट जाए जीवन अँधियारा ॥
गुरु मत को ना, मन जो विचारे। जीव वो अपनी गति बिगाड़े ॥
गुरु मत का जो करे विचार। होता जीव वो भव से पार ॥
दोहा- बिन देखे जो लोक की चर्चा करे अपार।
अपना ही कुछ खोए वो पाए ना कुछ भी गंवार ॥
औषध पाँच हरकोई बताता। औषध बिन ना कोई बच पाता ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध। द्वार पाँच औषध की सुगन्ध ॥
सभी हैं द्वार पूछने आते। बिन पूछे नहीं वो रुक पाते ॥
कोई मोटा कोई पतला द्वार। सबके भिन्न भिन्न व्यवहार ॥

Signature

पतला शब्द है पवन स्वरूप। उससे मोटा अग्नि रूप ॥
अग्नि से जल का मोटा रूप। जल से मोटा पृथ्वी स्वरूप ॥
फिर प्रकाश है एक से एक। स्थिर होके सकते देख ॥
पृथ्वी से जल पतला होता। दीखे सब जो अन्दर होता।
जल से पतला तेज प्रकाश। जिससे बने पृथ्वी आकाश ॥
रूप से अधिक शब्द उजियारा। जिसमें दिखता जगत ये सारा।
भूत भविष्य या हो वर्तमान। सबके अन्दर शब्द प्रमाण ।।
शब्द के भीतर अग्नि रहती। अग्नि मध्य जल धारा बहती ॥
जल के भीतर पृथ्वी वास। पृथ्वी भीतर शब्द प्रकाश ॥
दोहा - रैन समाए भानू में, भानू आकाश माँही।
आकाश समाए शब्द में, शब्द रहे घट मांही ॥
पांचो औषध करूं विचार। मोटे पतले का व्यवहार।
अन्न व जल जब पेट समोत। भूख प्यास को हैं ये मिटोते ॥
देह के भिन्न भिन्न सब रोग। मिट जाते है भोज के योग ॥
गन्ध जो खोपड़ी तक है जाए। गुण अवगुण सब संग ले जाए ॥
आँख से रूप रस जो है लेते। शीत ग्रीष्म सब अंग में देते ॥
शब्दौषध जाए कान के द्वार। संशय मिटाके करे निस्तार ॥

Signature

हर्ष विषाद यंत्र व मंत्र | इनसे रहे कोई विरला स्वतंत्र ।।
मर्म सभी द्वारों का बूझे | बिना शब्द न निर्णय सूझे ।।
शब्द पारदर्शी है विचार | जिससे सबका हो उद्धार ।।
शब्द बिना कोई पार ना पावे | बिन गुरु कौन शब्द समझावे ।
पारदर्शी सर्वत्र वो रहता | बिन उसके कोई कर्म ना बनता ।।
दोहा - शब्द बिना श्रुति नैनहीन, कहाँ किधर वो जाए ।।
द्वार ना पाए शब्द का यहाँ वहाँ धक्का खाए ।।
गुरु गुरु में भेद है भिन्न भिन्न है स्वभाव ।
गुरु सदा ऐसा मानो जो जोन शब्द ~~का~~ प्रभाव ।।
जगमांही वेष बहुत विराजे | नाना भांति की औषध साजे ।
सत्य एक है झूठ हैं सोर | एक झूठ सब काम बिगाड़े ।।
एक असल है, नकल अनेक | नकल अनेकों ना पावे एक ।।
ठग ~~बहु~~ बहुविधि से ठगते जात | यम के जाल में है उलझात ।।
सोच समझके औषध लीजे | नहीं विश्वास झूठों पे कीजे ।।

— मसला —

गुरु कीजिए जानके | पानी पीजिए छानके ।।

Signature

चौ॰ - वेद पुराण किताब कुरान। दोहा साखी में शब्द प्रमाण॥
शब्द का है अनंत विस्तार। बिन जाने नहीं होय सुधार॥
बहुत जांचके जो औषध करते। यम फन्दा से वो ही हैं बचते॥
निर्गम वाणी गुरु से पाओ। बन्धन भव के सभी मिटाओ॥
शब्द के जो आश्रित हो जाता। सेवा कर निज काम बनाता॥
सेवा करे जो शिष्य कहावे। शब्द की महिमा सबको बतावे॥
गेण्डु बुद्धि कहे गुरु हो एक। जिसको तुम सेवोगे अनेक॥
गुरु मत को हृदय में बसाके। गुरु सेवा करो लगन लगाके॥
सेवक वही जो सेवा करते। संदेह नहीं जो मन में रखते॥
अपने गुरु का मत जो मानें। बाकी और मंत्र नहीं जानें॥
बिना शब्द के द्वन्द ना मिटते। मन व मुख लड़ लड़के मरते॥
जहाँ झगड़ा वहाँ गुरु मत नाँही। जहाँ गुरुमत वहाँ द्वन्द है नांही॥
दोहा - पक्षपात के कारण ही रहता जग अज्ञान।
निष्पक्ष होइ हरि को भजे वही है संत सुजान॥
शब्द शब्द भिन्न होते हैं सार शब्द समझ लीजे।
कहे कबीर, बिन सारशब्द जीवन व्यर्थ नहीं कीजे॥

Signature

खोटा खरा तुम परखो भाई। इसमे जीव की है ये भलाई॥
भव सागर कठिनाई है आये। नाम की नौका ही पार लगाये॥
भव सागर से जो तर पाए। इष्ट मुक्ति उनको मिल जाए॥
जहां से जन्मे वही समाएं। कभी विकार मूल ना जगाए॥
भ्रम मे सभी जीव भरमाते। नट की भाँति, स्वरूप बदले॥
करामात जो अपनी दिखाने। नास्तिक सत्य ज्ञान से माने॥
ऋद्धि सिद्धि सब मिट जाती। कुशल ना नास्तिक ज्ञान से होती॥
नास्तिक को धन ऐश्वर्य आए। इसके पीछे ही वो बौराए॥
नास्तिक गुरु शिष्य संग ले जाते। यम फंदा मे दोऊ फंस जाते॥
रोगी वैद्य दोनों इक हो जाते। कल्पना कर औषध जो बताते॥
किस कारण नर साई देते। जांच के सौदा क्यों ना लेते॥
ठग गुरु शिष्य को बहुविधि लूटे। यम फंदा से वो कभी ना छूटे॥
अज्ञानी को ना गुरु बनाओ। देख-परख के गुरु बनाओ॥
ज्ञान अधूरा ना पार लगाए। खुद भी डूबे तुम्हे डुबाए॥
देख परख के करना धन्धा। तभी कटेगा यम का फंदा॥
गुरु जो ज्ञानी जिनमे योग। हरते शिष्य के सारे रोग॥
ना सन्देह ना यम का त्रास। सदा प्रसन्नता से करो विलास॥
धन्य वोही जो पूछके चलते। अन्धे भटक भटक भव पड़ते॥

दोहा - बलिहारी उस पुरुष पे परचित्त जो परखनहार।
खाँड का खारा कहता जो दो है मूर्ख गंवार॥
बन्दगी करु विवेक की, भेष धरे हर कोई।
वहाँ बन्दगी व्यर्थ है जहाँ शब्द विवेक ना होई॥
मानुष देही पायके चूका जो इस बार।
जाई पड़ा जो भवचक्र मे हो ना कभी उबार॥

॥ इति सर्वज्ञसागर समाप्त ॥

Signature